लड़ने के लिए बहाना चाहिए...? जी नहीं

जनाब शकील हसन शमसी साहब ''राष्ट्रीय सहारा'' देहली

बचपन में एक मज़ेदार क़िस्सा सुना था कि दो औरतें बहुत देर से जाड़े की धूप में लेटी धूप का मज़ा ले रही थीं और इस तरह जब लेटे-लेटे काफ़ी देर हो गई तो एक ने दूसरी से कहा कि ऐ बहन ख़ाली लेटे-लेटे क्या करूँ? दूसरी ने कहा आओ बहन लड़ें... बस इतना कहना था कि पहली औरत बोली मैं क्यों लड़ूँ... लड़े मेरी बला... दूसरी औरत ने कहा तूने मुझे बला कहा? और फिर दोनों के दरमियान ऐसी लड़ाई छिड़ी कि दोनों ख़ानवादे आमने-सामने आ गए और फिर गाँव का गाँव लड़ने लगा। ऐसा ही हाल कुछ मुसलमानों का भी है, जिनको लड़ने के लिए किसी बहाने की ज़रूरत भी नहीं बग़ैर किसी वजह और बग़ैर किसी सबब के वह लड़ने लगते हैं। इस बार के यौमे आशूरा के मौक़े पर कई जगहों पर मुसलमानों के दरमियान कुछ ऐसे ही झगड़े हुए, जिनमें कोई ख़ास वजह नहीं थी, छोटी-छोटी बातों को बहाना बना लिया गया।

कानपुर में देवबंदी बरेलवी में झगड़ा हो गया तो लखनऊ में हमेशा की तरह शिया-सुन्नी फ़साद करवाने की हर मुमकिन कोशिश की गई और वहाँ सुन्नी फ़िरक़े के लोग भी आपस में भिड़े, अमरोहा जैसे अम्न वाले इलाक़े में कशीदगी पैदा की गई, बिजनौर के एक क़स्बे सैदपुर में भी बग़ैर किसी वजह से मुसलमानों के दरमियान फ़साद हो गया। सीतापुर के तारीख़ी क़सबे महमूदाबाद में अशर-ए-मुहर्रम के दौरान काफ़ी कशीदगी रही और कई बार हालात इतने ख़राब हो गए कि पुलिस को बीच-बचाव करना पड़ा। इसके अलावा कई जगहों पर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भी तनाव पैदा हो गया और बदतरीन फ़सादों का शिकार बनने वाले गुजरात के शहर अहमदाबाद में मुहर्रम के जुलूसों को लेकर झगड़ा हो गया। सवाल ये उठता है कि यौमे आशूरा जो क़ुरबानी, ईसार, सब्र और क़ुव्वते बर्दाश्त का सबक़ याद करने का दिन है, उस दिन हम अपनी फ़िक्र का दायरा इतना तंग क्यों कर लेते हैं कि ज़रा-ज़रा सी बात पर लड़ने-भिड़ने को तैयार हो जाते है?

यहाँ पर मैं किसी और शहर का ज़िक्र नहीं करना चाहता, क्योंकि मैं वहाँ मौजूद नहीं था, लेकिन लखनऊ के तमाम वाक़िआत मेरी निगाहों के सामने हैं, इसलिए वहीं का तज़किरा करना चाहूँगा। पहली मुहर्रम से नौ मुहर्रम तक लखनऊ की फ़ज़ा बिल्कुल नॉरमल थी। सब लोग मुतमइन थे कि मुहर्रम बहुत सुकून के साथ गुज़र रहा है। उस नाम नेहाद शिया-शिया लड़ाई का भी दूर तक कोई निशान नहीं था, जिसको मुहर्रम से कुछ दिन पहले हवा देने की काफ़ी कोशिश की गई थी। सुन्नी और शिया फ़िरक़े के दरमियान ज़बरदस्त इत्तेहाद की फ़िज़ा थी, सुन्नियों की तरफ़ से कई जगह चाय की सबीलें लगाई गई थीं। बाज़ारों में चहल-पहल थी और पुलिस के गश्त के बावजूद तनाव नहीं था। जैसे शिया और सुन्नी फ़िरक़े के वह पुराने खिलाड़ी जो हमेशा एक दूसरे के अक़ीदों पर तंज़ करने में लगे रहते हैं, इस बार भी लगे रहे, लेकिन उनकी मजलिसों या जल्सों में कही जाने वाली दिल को दुखाने वाली बातों का असर लखनऊ की आम ज़िंदगी पर नहीं पड़ा। आशूर का दिन भी मुकम्मल सुकून के साथ गुज़र गया सब मुतमइन थे कि चलो मामलात बहुत सुकून के साथ निपट गए।

लखनऊ में यौमे आशूर का सबसे बड़ा प्रोग्राम माह नगर की कर्बला में होता है (जिसको अब महानगर कहा जाता है) जहाँ सुबह से शाम तक एक भीड़ रहती है। ये कर्बला लखनऊ के सुन्नियों की सबसे बड़ी कर्बला है, यहाँ आशूर के दिन कम से कम 4 लाख लोग ताज़िये के जुलूसों के साथ आते हैं। इसके अलावा सुन्नियों का दूसरा सबसे बड़ा इज्तेमाअ बंगला बाज़ार की कर्बला में होता है। तीसरा बड़ा इज्तेमाअ फूल कटोरा में होता है। इन सब ही जगहों पर सुन्नी मसलक के लोग अपने-अपने ताज़िये दफ़न करने आते हैं। मैं दोपहर में महानगर की कर्बला गया तो वहाँ का मंज़र देखकर हैरान रह गया। यहाँ ताज़िये के साथ दफ़ और नक़्क़ारे तो बज ही रहे थे साथ ही साथ कई लोग ज़ंजीरों का मातम भी कर रहे थे। यहाँ एक नया अंदाज़ ये देखने में आया कि बिजली के पुराने ट्यूब सर पर फोड़ने का मुज़ाहेरा करने वाले नौजवान भी ताज़ियों के साथ चल रहे थे उनमें से बहुत लोगों के माथे से ख़ून बह रहा था। ये सब लोग इमाम हुसैन के सब्र व इस्तेक़लाल, हिम्मत और हौसले को सलाम पेश कर रहे थे, लेकिन जब हक़ीक़ी ज़िंदगी में कुव्वते बर्दाश्त के मुज़ाहरे का मामला सामने आया तो कुछ लोग इस कसौटी पर खरे न उतर सके और एक-दूसरे से ताज़िया आगे निकाल ले जाने के मामले पर उलझ गए और मारपीट पर तैयार हो गए। हंगामे को रोकने के लिए पुलिस को बीच में आना पड़ा, लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि ये झगड़ा मेरे सामने नहीं हुआ, बल्कि मैंने इसकी ख़बर दूसरे दिन अख़बार में पढ़ी।

शियों का सबसे बड़ा इज्तेमाअ तालकटोरा में मीर ख़ुदा बख़्श की कर्बला में होता है, जहाँ पिछले ज़माने से शिया अंजुमनें अपने जुलूसों के साथ पहुँचती थीं, लेकिन 1977 के शिया-सुन्नी फ़साद के बाद ये सिलसिला तक़रीबन 20 बरस तक कर्बला के अंदर ही महदूद रहा और फिर 1997 में शिया और सुन्नी फ़िरक़ों के दरमियान मुआहदे के बाद से तमाम अंजुमनों का एक मुश्तरका जुलूस नाज़िम साहब के इमामबाड़े से उठकर ताल कटोरा तक जाने लगा। ये जुलूस ख़ैर और आफ़ियत के साथ कर्बला पहुँच गया और जुलूस में शरीक होने वाले शहर में होने वाले ख़ास प्रोग्राम फ़ाक़ा शिकनी में शरीक होने लगे। सब मुतमइन थे कि हर तरफ़ सुकून रहा, लेकिन अभी इत्मिनान की ये घड़ियाँ अपने नुक़्त-ए-कमाल को नहीं पहुँची थीं कि अचानक 4 बजे शाम को नारों की आवाज़ से पुराने शहर का वह इलाक़ा गूँजने लगा जहाँ मेरा घर है। मुझे ताज्जुब हुआ कि ऐ अल्लाह ये क्या हुआ? बाहर सड़क पर निकल कर देखा तो नौजवानों का एक गिरोह फ़साद करवाने की ग़रज़ से इश्तेआल अंगेज़ी में लगा है। उनकी हरकतों की वजह से भगदड़ सी मची हुई थी। ये गिरोह कह रहा था कि फ़लाँ महल्ले में इतने लोग मार दिये गए फ़लाँ महल्ले में इतने खीच लिए गए। मुझे ऐसा लगा कि एक ख़ास गिरोह की जानिब से अफ़वाहों और झूठी ख़बरों को बुनियाद बनाकर फ़साद करवाने की साज़िश रची गई है। इस गिरोह पर क़ाबू पाने के लिए मैंने महल्लों के बहुत से नौजवानों को साथ लिया और मुशतइल गिरोह को विक्टोरिया स्ट्रीट छोड़कर जाने पर मजबूर किया। बाद में कई दूसरे इलाक़ों से ऐसी ख़बरें आईं कि सुन्नी अक्सरियती इलाक़ों में शिया नौजवानों को घेर कर मारा गया और शिया अकसरियत वाले महल्लों में अकेले निकलने की हिम्मत करने वाले सुन्नी राहगीरों पर हमला किया गया, लेकिन हर जगह से अच्छी ख़बर ये थी कि हर जगह फ़साद की कोशिशों को नाकाम बनाने वाले ज़्यादा थे और फ़साद करवाने की कोशिश करवाने वालों की तादाद बहुत कम थी। इसी वजह से बिना पुलिस की मौजूदगी के हालात कई जगह पर क़ाबू में रहे। पुलिस का मौक़े पर मौजूद न होना भी ठीक ही रहा क्योंकि पुलिस दोनों गिरोहों को मुन्तशिर करने के लिए लाठी चार्ज करती तो हालात कुछ ज़्यादा ही बिगड़ते। कई हस्सास इलाक़ों में नारेबाज़ी हुई और देर रात तक इसका सिलसिला जारी रहा, जिसकी वजह से ज़िला हुक्काम ने मजलिसे शामे ग़रीबाँ को मंसूख़ किए जाने की राय दी, जिसको मुन्तज़िमीन ने मंज़ूर नहीं किया अलबत्ता तनाव की वजह से इस तारीख़ी मजलिस में हाज़िरीन की तादाद ज़रूर कम हो गई। इस मजलिस के बाद भी कुछ लोगों ने

शेष... पेज 14 पर

लेकर शबे आशूर तक इमाम हुसैन[अ०] ने हर क़दम पर यही कोशिश की कि उनके साथ कम से कम लोग हों, लेकिन जो भी हों वह ऐसे हों, जिनका जवाब ये दुनिया न ला सके। इमाम हुसैन[अ०] जिन बहत्तर साथियों को कर्बला के मैदान में लाए थे वह बहत्तर का अदद नहीं था, बल्कि बहत्तर इकाईयाँ थीं, जिनको इमाम हुसैन[अ०] ने बराबर से लाकर खड़ा कर दिया था, क्योंकि बहत्तर इकाईयों को अगर किसी काग़ज़ पर बराबर लिख दिया जाए तो इतना बड़ा अदद बन जाएगा जिसका हिसाब कोई कल्कुलेटर नहीं लगा पाएगा, इमाम हुसैन[अ०] का हर सिपाही अज़्म व इस्तेक़लाल की एक ऐसी इकाई था, जिसका कोई जवाब नहीं था, इस लिए उनको सिर्फ़ बहत्तर अफ़राद की शक्ल में नहीं देखा जा सकता, बल्कि उनको एक इकाई की शक्ल में रखा जाना चाहिए। इमाम हुसैन[अ०] अपने साथ सब्र के वह नमूने लाए थे जिनको एक फ़र्द की शक्ल में देखा ही नहीं जा सकता इसलिए बहत्तर अफ़राद पर मुश्तमिल ये लश्कर एक लाख के लश्कर से यूँ टकराया कि अबरहा की फ़ौज की तरह यज़ीद की फ़ौज की धज्जियाँ उड़ गईं। इमाम हुसैन[अ०] के बहत्तर सिपाहियों ने यज़ीद की फ़ौजों को ऐसी हार दी कि उसका नाम और निशान बाक़ी नहीं रहा और हुसैनियत का परचम आज तक लहरा रहा है।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा, (उर्दू) 17 दिसम्बर 2010[ई०])

शेष..... लड़ने के लिए बहाना चाहिए...? जी नहीं

माहौल को बिगाड़ने की कोशिश की, लेकिन अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है कि लखनऊ के मुसलमान एक दूसरे का ख़ून बहाने पर तैयार नहीं हुए। कहीं पर फ़सादी तबक़ा फ़साद करवाने में कामयाब नहीं हो सका। इश्तेआलअंगेज़ नारों के ज़रिए शहर की फ़ज़ा ख़राब करने और एक दूसरे के ख़िलाफ़ ज़हर उगल कर फ़साद करवाने की ये चाल भी नाकाम हो गई, लेकिन अफ़वाहों ने पुराने लखनऊ में रहने वालों की नाक में दम कर दिया। हर मिनट पर कहीं न कहीं से फ़साद होने या किसी के मारे जाने की ख़बर आती थी। मोबाइल की इफ़रात के सबब भी अफ़वाहों में इज़ाफ़ा हुआ, मगर ये सब अफ़वाहें झूठी साबित हुईं। 11 मुहर्रम को भी अफ़वाहों का बाज़ार गर्म रहा और एक आद मोहल्ले में बेक़ुसूर रास्ता चलने वालों को ज़ुल्मो सितम का निशाना भी बनाया गया, लेकिन फ़साद फिर भी नहीं हुआ, लेकिन सबसे दिलचस्प बात ये थी कि इन झगड़ों का सबब क्या था वह कोई नहीं बता सका। क्योंकि न तो शियों की तरफ़ से मुआहदे की ख़िलाफ़वर्ज़ी हुई थी न सुन्नियों की तरफ़ से, यानी झगड़ा बेसबब था। आख़िर में शिया और सुन्नी उलमा की एक मीटिंग डिस्ट्रिक मजिस्ट्रेट की रिहाइशगाह पर हुई और उसमें दोनों फ़िरकों के लोगों से अम्नो अमान बनाए रखने की अपील की गई। इसके बाद एक और बेहतरीन पहल कुछ शिया और सुन्नी नौजवानों ने की उन लोगों ने 12 मुहर्रम की रात को लखनऊ के निहायत हस्सास इलाक़े विक्टोरिया स्ट्रीट पर एक अम्न मार्च का इन्एक़ाद किया। इस तक़रीब की ख़ास बात ये थी कि शिया नौजवानों का गिरोह सुन्नी आलिमे दीन मौलाना ख़ालिद रशीद फ़िरंगी महली को एक अमन मार्च में बुलाने के लिए फ़िरंगी महल गया और सुन्नी नौजवानों का गिरोह शिया आलिमे दीन मौलाना कल्बे जवाद के घर गया और ये दोनों गिरोह इन उलमा को अपने साथ लेकर पाटानाला चौकी के क़रीब आए, जहाँ दोनों ने शिया और सुन्नी फ़िरक़ों से अम्न क़ायम रखने की अपील की, लेकिन मीडिया ने इस अहम तरीन प्रोग्राम को बिल्कुल नज़र अंदाज़ किया। शायद मीडिया को मुसलमानों के दरमियान फ़साद की ख़बरें ही अज़ीज़ हैं और अम्नो अमान की बातों से उसका कोई मतलब नहीं। मीडिया ने भले ही कवरेज न किया हो, लेकिन इस तरह के प्रोग्रामों के इन्एक़ाद से पता चलता है कि मुस्लिम नौजवान मसलकी फ़सादों को रोकने के लिए कितने एक्टिव हो गए हैं और नई नस्ल के लोग कितनी ज़िम्मेदारी के साथ इत्तेहाद की मशाले रौशन करने में लगे हैं।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू) 22 दिसम्बर 2010[ई०])